Nāsadīyam
A Multi-Disciplinary National Research Journal (Annual)
Peer Reviewed/Refereed
Available online at: https://nasadiyam.dmmkkr.ac.in/
ISSN: 3108-0200 (Online)
Volume 4, Issue 1 (Jan – Dec), 2025, Pp 11-16

'महाभोज' उपन्यास में उदघाटित राजनीतिक छल-प्रपंच

डॉ॰ सीमा सिंह
सहायक प्रवक्त्री (हिन्दी विभाग)
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत
ई-मेलः seemasingh0105@gmail.com
दूरभाषः 9416935505

संक्षेपिका

भारतीय हिंदी साहित्य में आरंभ से ही राजनीति एवं उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार एक प्रमुख विषय रहा है । इसे साहित्यकारों ने अपनी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, व्यंग्य रचनाओं एवं साहित्य की अन्य विधाओं के माध्यम से दर्शाया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर बाबू बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचंद, निराला, दिनकर, राही मासूम रजा, श्री लाल शुक्ल, काशीनाथ सिंह, मनोहर श्याम जोशी, भीष्म साहनी, नागार्जुन, दुष्यंत कुमार, हरिशंकर परसाई, स्वदेश दीपक, शरद जोशी, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, मालती जोशी आदि अनेकों-अनेक हिंदी के साहित्यकारों ने इस विषय को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में 'महाभोज' उपन्यास को शोध की विषयवस्तु के रूप में लिया गया है। इसके माध्यम से भारतीय राजनीति का यथार्थ चित्र देखने का अवसर मिलता है और इसमें भारतीय राजनीति के स्वरूप का बड़ी गहराई से चित्रण किया गया है। यह उपन्यास आज भी प्रासंगिक लगता है क्योंकि चाहे युग कोई भी हो सत्ताधारी एवं विपक्षी दल सत्ता प्राप्त करने के लिए बिना वजह के मुद्दों को हवा देते रहते हैं, और गलत-सही सभी प्रकार के हथकंडों का प्रयोग करते हैं। इसमें दर्शाया गया है कि किस प्रकार 'बिसू' जैसे गरीब दलित युवक की मौत (सभी जानते हैं कि उसकी हत्या हुई है) विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं के लिए महाभोज का अवसर बन जाती है, जिसमें सभी अपनी स्वार्थ सिद्धि लिए कुछ ना कुछ भोजन जुटाने का निर्लज प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। असल में नेताओं के लिए प्रत्येक घटना एक अवसर ही होती है। उपन्यास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है तो हमें पता चलता है कि किस प्रकार से बिसू की मौत राजनेताओं एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा एक तमाशा बना दी जाती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मन्नू भंडारी द्वारा रचित 'महाभोज' उपन्यास के माध्यम से महाभोज के कथानक में मुख्य पात्र दा साहब की राजनीतिक कलाबाजियां और दोहरे व्यक्तित्व को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखने, समझने और घटनाओं की गहन पड़ताल करने का प्रयास किया गया है। इसमें भारतीय राजनीति के स्वरूप और यथार्थ का मूल्यांकन करने का प्रयास भी किया गया है।

कुंजी शब्द: मन्नू भंडारी, राजनीतिक अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, जनतंत्र, नौकरशाही, मूल्यहीनता, गुंडागर्दी, जन विरोध, युवा आक्रोश, अवसरवादी, वोट बैंक, शोषण, चापलूसी, मिली-भगत, सत्ता का मोह।

शोध पत्र

मन्नू भंडारी द्वारा रचित 'महाभोज' उपन्यास का कथानक आरंभ होता है एक दलित युवक बिसू की लाश मिलने के साथ। गांव में सभी जानते हैं कि प्रभावशाली लोगों द्वारा उसकी हत्या की गई है, परंतु डर की वजह से कोई भी मुंह खोलने को तैयार नहीं होता। ऐसी घटनाओं पर राजनेताओं और मीडिया का जैसा व्यवहार रहता है उसका चित्रण करते हुए लेखिका ने उपन्यास में बताया है कि, 'गांव की सरहद से जरा परे हट कर जो

हरिजन टोला है वहां कुछ झोपड़ियां में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपड़ियां राख में बदल चुकी थीं और आदमी कबाब में। आग से उठने वाले धुएं के बादल तो एक ही दिन में छंट गए, पर शहरी गाड़ियों से उठने वाली धूल के बादल कई दिनों तक मंडराते रहे। नेताओं ने गीली आंखों और रुंधे हुए गले से क्षोभ प्रकट किया और बड़े-बड़े आश्वासन दिए।[1] वर्तमान में भी अखबारों के माध्यम से जातिप्रथा की वजह से होने वाले भेदभाव और स्वर्ण जातियों के द्वारा दलित जातियां पर किये जाने वाले अत्याचारों का समय - समय पर पता चलता ही रहता है। इस घटना को रेखांकित करते हुए एक विद्वान कहते हैं कि, 'महाभोज के दलित और अभावग्रस्त लोग आज भी आतंक के साए में जी रहे हैं वह मनुष्य नहीं केवल वोटर हैं उचित मजदूरी का सवाल तो अलग रहा, यदि वह बाहुबलियों के कहने से वोट नहीं देते तो उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित ही नहीं किया जाता बल्कि उनके घर भी जला दिए जाते हैं इतना आतंक की कोई गवाही देने को तैयार नहीं होता पुलिस भी पीड़ितों का ही उत्पीड़न करती है।[1] ऐसे में राजनेता भी अपनी पूर्व धारणाओं के आधार पर ही बात करते हैं और फैसले लेते हैं। उनको इन लोगों की पीड़ाओं के प्रति कोई जिम्मेदारी का भाव नहीं, परंतु अपने वोटो की चिंता स्पष्ट दिखाई देती है, 'पर इन नीची जातवालों का कुछ भरोसा नहीं ।घेर-घारकर लाने पर भी कुछ तो वोट देने आएंगे ही नहीं और जो आएंगे उनका रुख कब बदल जाए और वह फूट लें, कुछ ठीक नहीं ससुरों का ।[2] विभिन्न तरीकों से उन्हें बहकाने और भड़काने के प्रयास किए जाते हैं राजनीती द्वारा, 'दूसरे दिन सवेरे से ही गली-गली और घर-घर की दीवारों पर घरेलू- उद्योग- योजना के पोस्टर चिपकने लगे और शाम तक यह स्थिति हो गई कि जिधर नजर उठाओ, मुस्कुराते हुए दा साहब और नीचे योजना की रूपरेखा-मानो उनकी मुस्कान से ही बहकर निकल रही है योजना! पांच-सात स्वयंसेवक किस्म के लोग घर-घर जाकर विस्तार से इस योजना के बारे में समझा रहे हैं, फार्म भरवा रहे हैं और साथ ही यह बताना भी नहीं भूलते कि 15 तारीख को मुख्यमंत्री स्वयं आ रहे हैं इस योजना का उद्घाटन करने। जिस मुस्तैदी से काम हो रहा है उससे तो लगता है कि हफ्ता बीतते-न-बीतते हर घर में छोटा-मोटा उद्योग खुल जाएगा और देखते-देखते यह गाँव सदियों के दलीदार से मुक्ति पा जाएगा।[3]

राजनीति का कार्य होता है समाज को सही दिशा में ले जाना क्योंकि राजनीति न सिर्फ ताकतवर होती है बल्कि शक्ति का सबसे बड़ा केंद्र भी होती है। शासन इस तरह से किया जाता है जिससे राज्य की रक्षा हो और उसमें रहने वाले प्रत्येक नागरिक को सुरक्षित होने का भरोसा रहे। हिंदी शब्द सागर में राजनीति शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि, 'राजनीति वह नीति है जिसका सहारा लेकर शासन अपने राज्य की रक्षा और शासन की पद्धति को दृढ़ करता है।'[4] परशुराम शुक्ल के अनुसार, 'भारत में राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना की अनुगामिनी होकर आई है। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, विवेकानंद आदि जो हिंदू नव-उत्थान के नेता हुए, उनके विचारों के प्रभाव स्वरूप समाज में अपने धर्म और संस्कृति के प्रति आस्था उत्पन्न हुई, गौरवशाली अतीत के प्रति सम्मान की भावना आई और विदेशी शासकों की भौतिकता प्रधान संस्कृति की तुलना में अपनी आध्यात्मिकता की विशेषता ने भारतीयों के राजनीतिक असंतोष को शांत किया।'[5] इस प्रकार किसी भी देश की राजनीति उस देश के समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। ऐसे में 'एक राजनेता के लिए निष्पक्ष भाव के साथ-साथ संवेदनशील होना आवश्यक होने के साथ-साथ अपेक्षित भी होता है। वह राजनीति में शुचिता का प्रतीक हो,

सरल स्वभाव तथा मिलनसार व्यक्तित्व का धनी हो, ऐसा माना गया है। उपन्यास के आरंभिक अंश में उक्त सभी गुणों की झलकियां मुख्यमंत्री दा साहब में विद्यमान दिखाई देती हैं, परंतु जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता जाता है तब पाठक को पता चलता है कि यह सब तो ऊपरी तौर पर दिखावा मात्र है।'[6] उनकी जीवन शैली की सादगी को प्रकट करते हुए लेखिका लिखती है कि dउनके 'कमरे में सजावट के नाम पर केवल दो बड़ी-बड़ी तस्वीर टंगी है दीवार पर, गांधी और नेहरू की । इन्हें अपना पथ-प्रदर्शक और अपनी प्रेरणा मानते हैं दा साहब। गीता का उपदेश उनके जीवन का मूल मंत्र है। घर के हर कोने में गीता की एक प्रति मिल जाएगी। वैसे वह कभी किसी को उपहार नहीं देते, व्यर्थ के ढकोसलों में कतई विश्वास नहीं है उनका। पर फिर भी कभी उपहार देना ही पड़ गया तो सदा गीता की प्रति ही दी है।[7] अपनी महानता प्रकट करने के लिए और अपने व्यक्तित्व में विश्वसनीयता लाने के लिए, राजनेता अक्सर अपने आप को प्रसिद्ध समाज सुधाकों, राजनीतिक नेताओं और महापुरुषों के विचारों के साथ जोड़ते हैं। दा साहब महात्मा गांधी को अपना आदर्श मानते हुए अक्सर कहते हैं कि, 'बापू यूं ही इतने बड़े देश को अपने साथ त्याग के रास्ते पर चला कर नहीं ले गए थे…….पहले खुद चले थे उसे रास्ते पर। आस्था से कही बात और आस्था से किया काम दूसरों तक न पहुंचे, यह हो ही नहीं सकता। नहीं पहुंचता है तो समझो, कहीं तुम्हारी अपनी आस्था में कमी है।' बापू की हर बात, हर आदर्श को गांठ बांध कर रखा है दा साहब ने।[8] बिसू की मौत पर उनकी बातें भी एक जिम्मेदार और कर्तव्यनिष्ठ नेता जैसी ही हैं। खूब चिकनी-चुपड़ी और आदर्शवाद से लिपि-पुती। वो बोले कि, 'खड़ा हुआ हूं आप लोगों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए। बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की नहीं है, यह आप सब लोगों के जिंदा रहने का सवाल है। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं, आपके जिंदा रहने के हक की मौत है। जुलुम ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिए हैं, इसलिए मैं लडूंगा आपकी लड़ाई। आखिरी दम तक लडूंगा।[9]

दुनिया के किसी भी प्रजातंत्र को सुनिश्चित करने के लिए मीडिया का बहुत महत्वपूर्ण भाग रहता है। वह न केवल जनता की भावनाएं राजनेताओं तक पहुंचाता है बल्कि राजनीति की सुचिता को बरकरार रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दा साहब इस बात को बखूबी समझते हैं। वह मीडिया पर नियंत्रण के महत्व को भी समझते हैं। पाठकों को आरंभ में उनकी बातों से वे मिडिया की स्वतंत्रता को महत्व देते हुए से लगते हैं, 'प्रजातंत्र में अखबार पर पाबंदी हो, अशोभनीय स्थिति लगती है। बेहतर यह है कि अब मौका मिला है लोगों ने भरोसा करके कुछ जिम्मेदारियां सौंपी हैं तो उन्हें अच्छी तरह निभाएं। पूरी लगन और निष्ठा के साथ, हम लोग भी और आप लोग भी । मैं तो भाई, कबीर के दोहे का कायल हूं कि 'निंदक नियरे राखिए'। प्रशंसक से निंदक ज्यादा हितैषी होता है हमेशा। आपको सतपथ पर रखता है। आदमी एक बार इस गुर को समझ ले तो हमेशा के लिए भटकने से बच जाए।[10] वो क्षेत्र के प्रमुख पत्र 'मशाल' के संपादक दत्ता बाबू के सामने डीआईजी को फोन पर निर्देश देते हुए कहते हैं 'देखो सिन्हा, मैं चाहता हूं कि घटना की सही-सही तहकीकात हो। कोई क्या कहता है, इसकी चिंता मत करो। मेरे कहने की भी चिंता मत करो।बस अपना फर्ज निभाओ, ईमानदारी और सच्चाई के साथ! पुलिस के सामने जनता को अधिक सुरक्षित महसूस करना चाहिए आतंकित नहीं! जनता यदि डरती है तो कलंक है यह पुलिसवालों के लिए। मेरे अपने लिए भी। यह मैं बर्दाश्त नहीं करूंगा। जाइए, जैसे भी हो उन्हें भरोसा दीजिए निडर बनाइये कि वे सच बात कह सकें।[11] थोड़ा रुक कर

संपादक बाबू से पूछा, 'सरकारी विज्ञापन मिलने लगे हैं ना आपको कागज का कोटा तो पूरा मिल रहा है ना….? आपके अखबारों को पूरे हक़ मिल गए, अब आप लोगों को पूरा कर्तव्य भी निभाना चाहिए अपना-देश के प्रति, समाज के प्रति और खास करके इस देश की गरीब जनता के प्रति।[12] राजनेता किस प्रकार से ईमानदारी का ढोंग भी कर लेता है, मनमाफिक परिणाम भी प्राप्त कर लेता है, इसका जीवंत उदाहरण उपन्यास में मिलता है, 'दूसरे दिन मार्शल का अंक आया- बिल्कुल नए तेवर के साथ। पुलिस की अभी तक की तहकीकात के आधार पर यह संकेत दिया गया था कि यह हादसा हत्या का नहीं, आत्महत्या का है। साथ ही दा साहब के सख्ती से दिए गए उस आदेश का हवाला भी था, जिसमें उन्होंने पुलिस को गहरी छानबीन करके एक बेबाक रिपोर्ट तैयार करने की ताकीद की थी।[13] इस उपन्यास में पत्रकारिता की भूमिका का समसामयिक समय के आधार पर वर्णन है। मन्नू भंडारी का वह वर्णन आज भी प्रासंगिक है। लोकतंत्र में पत्रकारिता को चौथा स्तंभ होने का गौरव प्राप्त है परंतु वह अपने कर्तव्यों से विमुख होकर केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ है। अपनी टीआरपी के लिए खबरें वास्तविकता से दूर, केवल गरम मसाले में तब्दील की जा रही हैं। समाज के वास्तविक और ज्वलंत मुद्दों से ध्यान भटका दिया जाता है। उपन्यास में पत्रकारिता पर सत्ता से नजदीकियां और सत्ता की चाटुकारिता का बड़ी बेबाकी से वर्णन किया गया है।

आधुनिक मीडिया संस्थानों के बदलते हुए प्रतिबद्धताओं को लक्षित करते हुए डॉक्टर शशी जैकब कहती हैं कि आज लगभग सभी पत्र किसी न किसी पार्टी से संबंधित है एवं उनके पक्ष में प्रचार करते हैं। पार्टी के विरुद्ध उठाई गई आवाज को पूर्णतया पलट कर उन में फेर बदल कर झूठी खबरों को प्रसारित कर जनता के साथ अन्याय करते हैं।[14] यहां लेखिका एक लेखक होने के कर्तव्यभाव को समझते हुए उपन्यास के माध्यम से राजनीतिज्ञों के दोहरे चरित्र को पाठकों के सम्मुख रखती है और साहित्यकार की जिम्मेदारी को पूर्ण करती हैं, क्योंकि 'साहित्य का उद्देश्य मानवता की रक्षा करना है। इसी अर्थ में कहा जाता है कि साहित्य मनुष्यता का प्रहरी है। जो सत्ता मनुष्यता को समाप्त करने का षड्यंत्र रच रही है और उसे संवेदनहीन बना रही है, साहित्यकार उस सत्ता के विरोध में उठ खड़ा होता है।[15] हिंदी साहित्य के एक अन्य प्रसिद्ध आलोचक डॉ. गोपाल राय का मत है कि महाभोज में आज की राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकताएं, तिकड़मबाजी का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। आज की राजनीति में धन, गुंडागर्दी और छल-प्रपंच की प्रधानता हो गई है। उपन्यास लेखिका के राजनीतिक जीवन का अनुभव, उसका निजी भोगा हुआ या उसके बीच में से गुजरा हुआ अनुभव न भी हो, तो भी उसने उसे इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि उसमें कहीं भी अविश्वसनियता नजर नहीं आती।[16]

राजनीतिज्ञों के लिए अपनी सार्वजनिक छवि को आदर्श बना कर रखना, वोट प्राप्ति के लिए अत्यंत आवश्यक होता है। दा साहब के चरित्र में यह गुण मौजूद है। उपन्यास में एक स्थान पर बिन्दा जो कि बिसू का दोस्त था, उसने रैली के दौरान दा साहब का विरोध किया। उन्हें उसने गरीबों की हालत पर काफ़ी खरी-खोटी सुना दी और रैली स्थल छोड़ कर चला गया, तो दा साहब एक मंजे हुए नेता की तरह बड़े धैर्य से बोले, "बहुत क्रोध और साहस है इस नौजवान में। मुझे बहुत अच्छा लगा है इसका यह तेवर। जिस गाँव के नौजवानों में यह गुण हों …. वहां किसी तरह का जोर-जुलुम और अन्याय नहीं चल सकता। अपने गरीब भाइयों का हमदर्द लगता है। मुझे तो ऐसे निर्भीक और उत्साही नवयुवकों की आवश्यकता है इस योजना के लिए। चाहता हूं कि

घरेलू-उद्योग-योजना को आप लोग ही संभाले, आप लोग ही चलाएं।[17] और यही दा साहब बिसू की हत्या का आरोप बिंदा पर लगवाकर उसे जेल भेजकर उसे ठिकाने लगवा देते हैं।

एक राजनेता में संवेदनशीलता के गुण का बहुत महत्व है इस बात को दा साहब बहुत अच्छी तरह से समझते हैं इसलिए संवेदना और करुणा का दिखावा करते हुए वे रैली स्थल पर न जाकर सीधे पहुंच जाते हैं बिसू के घर, उसका पिता हीरा एकदम भौंचका-सा, समझ नहीं पा रहा कि क्या करे, क्या कहे! दा साहब ने सहानुभूति से पीठ पर हाथ रखा तो बस दो बूंद आंसू आंखों से चू कर झुर्रियों में समा गए। दा साहब ने उसे कंधा पकड़े-पकड़े अपनी गाड़ी में बैठा लिया और रैली स्थल की तरफ चल पड़े। (यहां पर दास साहब का सार्वजनिक रूप) और असल में राजनीत चल रही है कि 'पिछले पांच दिनों से दा साहब के विश्वसनीय पांडे जी ने रात-दिन एक करके एक ही काम किया था -सुकुल बाबू के सारे पोस्टरों के ऊपर दा साहब के पोस्टर चिपकवा दिए और घर-घर में बिसू की मौत की जगह घरेलू-उद्योग-योजना की चर्चा चलवा दी थी।[18] राजनेताओं के दोहरे व्यक्तित्व को दा साहब की इन गतिविधियों से आसानी समझा जा सकता है। इस उपन्यास के बारे में रजनी गुप्त ने ठीक ही कहा है कि, 'इस उपन्यास के लघु कलेवर में राजनीति के वृहत और जटिल जीवन की चुनौतियों के साथ अपना हित साधने की दुरभिसंधियों और साजिशों को बड़ी बारीकी से बुनकर पूरे साहस से निरावृत करने का रचनात्मक कौशल देखते ही बनता है।[19] असल में, 'लोकतंत्र में जैसे-जैसे दिखावा महत्वपूर्ण होता गया है वैसे-वैसे नेताओं का व्यक्तित्व दोगला होने लगता है, जो वह वस्तुतः सोचता है उसे व्यक्त नहीं कर सकता और जिसे व्यक्त करता है उसे महसूस नहीं करता। सफल नेता वही है जो अपने व्यक्तित्व के भीतर तक ऐसे दोगलेपन का विकास करें कि उसकी वास्तविकता छिपी रहे और कृत्रिम आदर्श व्यक्त होते रहें। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति तक के स्वामी दा साहब राजनीति की बेहद उलझी हुई स्थितियों में भी सफल होते हैं।[20] मन्नू भंडारी का 'महाभोज' अंतर्वस्तु के विस्तार का एक अभूतपूर्व उदाहरण है। महिला लेखन और लेखन की परंपरागत छवि को वह एक झटके से ध्वस्त करता है। भारतीय राजनीति के मानवीय चरित्र पर इस से तीखी टिप्पणी मुश्किल है। भारतीय समाज में राजनीति जीवन में घुसपैठ करती है। मूल्यहीनता और तिकड़म को महाभोज गहरी सलंग्नता के साथ उद्घाटित करता है। आज राजनीतिक व्यक्ति समाज और साहित्य का सबसे बड़ा खलनायक है। दा साहब के दोहरे व्यक्तित्व को उनके अंदर के शैतान और ऊपर के संत रूप को मन्नू भंडारी ने आश्चर्यजनक विश्वसनीयता से साधा है। बिसू, बिंदा और हीरा उस दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं जिनके शव पर राजनीति के गिद्ध जीम रहे हैं।[21]

निष्कर्ष

मन्नू भंडारी द्वारा रचित उपन्यास 'महाभोज', जो प्रस्तुत शोध-पत्र का केंद्रीय विषय है, भारतीय राजनीति के चरित्र को बखूबी प्रदर्शित करता है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से अपने साहित्य धर्म को निभाया है। दा साहब के चरित्र द्वारा राजनीति में व्याप्त असंख्य ऐसे राजनीतिज्ञों को बेनकाब किया गया है जो बातें तो आदर्शवादी करते हैं परंतु कार्य बेहद निकृष्ट करते हैं। अपने राजनीतिक सवर्तों के लिए आम जनता को लाभ सिद्धि का मोहरा बनाते हैं। इस उपन्यास की कथा के माध्यम से लेखिका ने दलित वर्ग की यथार्थ स्थिति और उनके ऊपर की जाने वाली नीचले स्तर की राजनीति को बड़ी ही प्रमाणिक प्रस्तुति दी है।

सन्दर्भ सूची

1. भंडारी, मन्नू, महाभोज, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 7-8
2. सिंह कुंवर पाल, बिसारिया अजय, हिंदी उपन्यास जनवादी परंपरा, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ सं.175
3. भंडारी, मन्नू, महाभोज, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 34
4. वही, पृष्ठ सं. 65
5. सं. श्यामसुंदर दास, हिंदी शब्द सागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, इंडियन प्रेस, काशी, 1922, भाग-45, पृष्ठ सं.451
6. शुक्ल, परशुराम, आधुनिक हिंदी काव्य और यथार्थवाद, प्रकाशन रामबाग, कानपुर, 1996, पृष्ठ सं.118
7. अहमद गुलफराज, सत्ता की राजनीति के विरुद्ध सत्य की राजनीति का संघर्ष महाभोज, jankipal.com/a-review-on-mahabhoj.html
8. भंडारी, मन्नू, महाभोज, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 12
9. वही, पृष्ठ सं. 37
10. वही, पृष्ठ सं. 33
11. वही, पृष्ठ सं. 39-40
12. वही, पृष्ठ सं. 41
13. वही, पृष्ठ सं. 44-45
14. वही, पृष्ठ सं. 48
15. शशि जैकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता,जवाहर पुस्तकालय, मथुरा,1989, पृष्ठ सं. 170
16. पालीवाल शोभा लोकतंत्र और साहित्यकार, साहित्यगार प्रकाशन, जयपुर 2002 पृष्ठ सं. 11
17. बिस्सा कृष्णकुमार, सठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृष्ठ संख्या 35-36।
18. भंडारी, मन्नू, महाभोज, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 2003, पृष्ठ सं. 73
19. वही, पृष्ठ सं. 68
20. शशि जैकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता,जवाहर पुस्तकालय, मथुरा,1989, पृष्ठ सं. 182
21. यादव गीता संतोष, महाभोज, जर्नल ऑफ़ इमर्जिंग टेक्नोलॉजी एंड इन्नोवेटिव रिसर्च, जुलाई 2021 वॉल्यूम 8 अंक 7।
22. मधुरेश हिंदी उपन्यास का विकास लोकभारती प्रकाशन दिल्ली 2011 पृष्ठ संख्या 201